International Journal of Applied Research 2018; 4(1): 597-600

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2018; 4(1): 597-600
www.allresearchjournal.com
Received: 25-10-2017
Accepted: 07-12-2017

पूनम कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
पूनम कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

वैदिक काल में उद्योग, शिल्प तथा व्यापार एवं वाणिज्य की स्थिति

पूनम कुमारी

सारांशः
वैदिक काल के आरंभिक चरणों में लोगों को जो स्वतंत्रताएँ थी अब उनपर कुठाराघात होने लगा था जिसका प्रभाव समाज व्यवस्था पर पड़ रहा था। इसके कारण अर्थ व्यवस्था भी प्रभावित हो रही थी। पूर्व के युगों में व्यापारी उन्मुक्त होकर सामुद्रिक व्यापार किया करते थे। लेकिन सूत्रकारों ने समुद्र यात्रा को निषिद्ध कर दिया। बौधायन सूत्र में कहा गया कि शास्त्रास्त्र एवं ऊन का व्यापार तथा समुद्र यात्रा निंदित कर्म है। समुद्र यात्रा करने से मनुष्य पतित हो जाता है। इससे यह प्रतीत होता है कि सूत्रकाल में आकर सामूहिक व्यापार निषिद्ध माना जाने लगा था और विदेशी व्यापार बहुत ही सीमित हो चला था। जाहिर है कि इस तरह की जटिलताओं एवं वर्जनाओं के कारण शिल्पी एवं व्यापारी वर्ग प्रभावित होने लगे जिसका प्रभाव उद्योग एवं व्यापार पर पड़ने के साथ–साथ नगरीकरण पर भी पड़ा होगा। निश्चित रूप से वैदिक काल का अंतिम चरण उद्योग, व्यवसाय एवं नगरीकरण के लिये स्वस्थप्रद नहीं रह गया था।

कूट शब्दः वैदिक काल में उद्योग, शिल्प तथा व्यापार, वाणिज्य, सामुद्रिक व्यापार, उद्योग, व्यवसाय एवं नगरीकरण

प्रस्तावनाः

वैदिक काल में उद्योग एवं शिल्प की स्थिति :

वैदिक काल का प्रथम चरण ऋग्वेद काल है जो इस सभ्यता ही नहीं भारतीय इतिहास एवं वाङ्मय का आद्य ग्रंथ है। इस ग्रंथ में एक प्रौढ़ सभ्यता के दर्शन होते हैं। अर्थात् जब आर्य सभ्यता ने विकास की कई सीढ़ियाँ पार कर ली एवं बौद्धिकता के चरम शिखर पर पहुँच चुके थे उस समय ऋग्वेद की ऋचाओं को एकत्रित कर उन्हें एक ग्रंथ का रूप दिया या फिर इसकी रचना की लेकिन फिर इसकी ऋचाओं के संकलन से पूर्व ही आर्य गण अनेक उद्योग एवं शिल्पों का विकास कर चुके थे। वैदिक कालीन शिल्प एवं उद्योग–धंधों की जानकारी शेष तीन वेदों, ब्राह्मण, ग्रंथों, संहिताओं, आरण्यकों आदि में विस्तार से मिलती है। अतः यहाँ कुछ प्रमुख वैदिक कालीन शिल्पों एवं उद्योगों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

स्वर्णाभूषण निर्माण– ऋग्वेद में सोना और अयस इन दो धातुओं का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। उस समय सोने से अनेक आभूषण बनाये जाते थे। जैसे कर्णफूल (कर्ण शोभन) [1], गले का हार (निष्कग्रीव) [2], दस्तारबन्द एवं पाजेब (खादी) [3] इत्यादि। ऋग्वेद में स्वर्णकार (हिरण्यकार) [4] का स्पष्ट रूप से उल्लेख है। प्रायः सोने के सिक्के (निष्क) [5] भी बनाये जाते थे।

अयस् शिल्प– अयस् के अर्थ को लेकर विद्वानों में आज भी एक मत नहीं है। लेकिन इसके रंग के सम्बन्ध में कहा गया है कि यह लाल होता था। [6] इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि यह धातु अवश्य ही तांबा रहा होगा। धातु का काम करने वाले शिल्पी के लिये ऋग्वेद में कर्मार [7] शब्द आया है। वह व्यक्ति जो इसे आग में पिघलाता था उसके लिये ध्मातृन [8] एवं जो इस धातु को पीटता था उसके लिये अयोहत [9] शब्द का प्रयोग मिलता है। इस अयस् धातु से बर्तन (धर्म अयस्मय) [10] बनाये जाते थे। इस विवरण से पता चलता है कि ऋग्वैदिक काल में एक ही उद्योग में कई प्रकार के कारीगरों की जरूरत पड़ती थी एवं उनके कार्यों का विभाजन हो गया था।
अयस् [11] शब्द का प्रचुर प्रयोग ऋग्वेद में ही प्राप्त होता है। इस धातु में खंभे (स्थूण) [12], कवच (खुगल) [13], सिर के टोप (शिप्रा) [14] एवं हथियार (ऋष्टि) [15] भी बनाये जाते थे।

चांदी शिल्प– अथर्ववेद में चांदी (रजत) [16] का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके विवरण के अनुसार इस धातु से बनी वस्तुओं को धारण करनेवाला व्यक्ति बलशाली होता है।

उत्तर वैदिक काल के अन्य ग्रंथों में चांदी के आभूषणों तथा थालियों का अनेक स्थानों पर उल्लेख प्राप्त होता है। [17] इस धातु के निष्क अर्थात् सिक्के भी बनाये जाने लगे थे।

लौह शिल्प– अथर्व वेद में लोहे के लिये श्याम या कृष्ण या अयस् शब्द का प्रयोग किया गया है। [18] इस धातु से तलवारें भी बनायी जाती थीं। आधुनिक इतिहासकारों का मत है कि आर्यों ने लोहे का प्रयोग उत्तर वैदिक काल में ही आरंभ कर दिया था हस्तिनापुर, आलमगीरपुर, नोह, अतरंजी, खेड़ा, बटेसर आदि स्थानों में लोहे से बने भालों के अग्र भाग एवं अन्य वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। ये सब स्थान कुरु–पांचाल प्रदेश में पड़ते हैं। [19] प्रायः इसी काल में लोहे के फाल का बनना आरंभ हुआ। इसके कारण कृषि क्षेत्र में क्रांति आ गयी और अनाज का उत्पादन काफी होने लगा। इसी कारण आसन्तीवंत, कारौती [20], मष्णार [21], काम्पिल्य, कौशाम्बी और परिचक्रा[22] जैसे नगरों का विकास हुआ।

अन्यान्य शिल्प– उत्तरवैदिक कालीन ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है कि टीन (त्रपु) [23], सीसा (सीस) [24], आदि की वस्तुएँ भी बनावी जाती थीं। वाजसनेयि संहिता में मणियों के आभूषण बनाने वाले (मणिकार) [25] का भी उल्लेख प्राप्त होता है।
ऋग्वैदिक काल में कारीगर एवं शिल्पी धातुओं को पिघलाने की कला से भली–भाँति परिचित थे। [26] उत्तरवैदिक काल में आकर इस प्रक्रिया में और अधिक सुधार लाया गया एवं पहले की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग के साथ अनेक धातुओं का बड़े पैमाने पर प्रयोग होने लगा।

काष्ठ शिल्प– ऋग्वेद में बढ़ई के लिये तक्षन् एवं त्वष्ट्र इन दो शब्दों का प्रयोग हुआ है। [27] इसके अतिरिक्त रथ का निर्माण करने वाले बढ़इयों के लिये रथकार [28] शब्द प्रयुक्त हुआ है। रथ का युद्ध जैसे कार्यों में बहुत ही महत्त्व था। अतः समाज में रथकारों का स्थान विशिष्ट था। बढ़ई माल ढोनेवाली गाड़ियाँ (अनस्) [29] भी बनाते थे। दो लकड़ी को खोदकर बर्तन जैसी वस्तुएँ भी बनाते थे। [30] शतपथ ब्राह्माण में दो पतवार वाले जहाज का वर्णन आया है जिसका निर्माण भी बढ़ई ही किया करते थे। [31]

वस्त्र शिल्प– ऋग्वेद में कपड़ा बनाने का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है। इसमें कपड़ा बुनने वाली दो महिलाओं की तुलना रात एवं दिन से की गयी है। [32] ऋग्वेद के चौथे मंडल में कपड़ा चुराने वाले चोर का उल्लेख है। छठे मंडल में उन शब्दों का प्रयोग हुआ है जो बुनाई कार्य में प्रयुक्त होते हैं, जैसे तंतुम, आन्तुम् एवं वयंति। [33] ऋग्वेद में जुलाहे के लिये 'वाय' [34] शब्द प्रयुक्त हुआ है जो दसवें मंडल में है। जुलाहे की दरकी के लिये ऋग्वेद में 'तसर' शब्द का प्रयोग हुआ है। [35] यजुर्वेद में करघे के लिये वेमन् शब्द का प्रयोग हुआ है। [36] ऋग्वैदिक काल में ऊनी कपड़े अधिक पहने जाते थे। गान्धार [38], परुषगी प्रदेश और सिन्धु प्रदेश के ऊन अच्छे माने जाते थे। [39] ऊन का उल्लेख उत्तरवैदिक काल के साहित्य में भी प्राप्त होता है। [40] उत्तर वैदिक काल मे 'क्षौम' (छलिटी) के भी कपड़े बनाये जाते थे। [41] अथर्ववेद में 'सन' का उल्लेख मिलता है।[42] संभव है कि सन के भी कपड़े बनाये जाते हों। कपास के कपड़ों का उल्लेख वैदिक साहित्य में नहीं प्राप्त होता है।
अनुमान किया जाता है कि ऋग्वैदिक काल में वस्त्रों की बुनाई का काम स्त्रियाँ ही किया करती थीं। वाजसनेयि संतिा में कसीदाकारी करने वाली स्त्रियों के लिये 'पेशकारी' शब्द का प्रयोग हुआ है। [43] वस्त्र बूननेवाली अधिकतर स्त्रियाँ ही होती थी। यह ऋग्वेद एवं अन्य उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों से स्पष्ट होता है। [44]

चर्म शिल्प– ऋग्वैदिक काल में चमड़े की कमाई का शिल्प विकसित हो चला था। [45] इस वेद में चमड़ा कमाने वालों के लिये श्चर्मम्नश शब्द का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में चमड़े की थैली और वर्तनों का उल्लेख मिलता है जिनमें तरल पदार्थ रखे जाते थे। [46] बाल के खाल से धनुष की प्रत्यंचा, रथ के घोड़ों के लगाम एवं चाबुक बनाये जाते थे। [47]

पात्र निर्माण शिल्प– उत्तर वैदिक कालीन साहित्य में कुम्हार के लिये 'कुलाल' एवं 'मृत्पच' शब्दों का उल्लेख हुआ है। [48] इस काल में आर्य गण अधिकतर मिट्टी के बर्तनों का ही प्रयोग करते थे। तथापि कुछ बर्तन एवं पात्र, लकड़ी एवं तांबे के भी होते थे। उत्तर वैदिक काल में धातु के बर्तन अधिक संख्या में बनने लगे थे।

सुरा उद्योग– वैदिक काल में यद्यपि सुरा पान को अच्छा नहीं माना जाता था। तथापि इसका निर्माण होता था। तैत्तिरीय ब्राह्मण में सुरा बनाने का उल्लेख प्राप्त होता है। [49]

वस्तु शिल्प– इस काल में भवन अधिकतर लकड़ियों से बनाये जाते थे। यजुर्वेद में 10800 ईंटों से चिड़िया के आकार की एक वेदी बनाने का उल्लेख मिलता है जिससे स्पष्ट होता है कि इस काल में वास्तु शिल्प का भी बहुत विकास हो चुका था। [50]

विविध शिल्प– वैदिक काल में कुछ अन्य प्रकार के शिल्प जैसे मणियों एवं रत्नों से आभूषण बनाने, टोकरी बनाने, रस्सी बनाने, कपड़ों की रंगाई, धनुष निर्माण आदि का भी विकास हो चुका था। [51] ऋग्वेद में भी कई हस्तशिल्पों का उल्लेख मिलता है। जैसे– सीलाई, चटाई बूनना इत्यादि। [52]

वैदिक काल में व्यापार एवं वाणिज्य :

वैदिक काल में जिस प्रकार से उद्योग एवं शिल्पों का विकास हुआ था, उस आधार पर यह धारणा बनती है कि वैदिक कालीन आर्य उद्योग–धंधों के साथ–साथ व्यवसाय में भी निपुण होते होंगे। वैदिक कालीन कारीगर जो सामान बनाते होंगे उन्हें विक्रय के लिये बाहर ले जाया जाता होगा। साथ ही बाहर से भी आवश्यक सामान मँगाये जाते होंगे। वैदिक कालीन वाणिज्य–व्यवसाय की पुष्टि ऋग्वेद सहित अन्य वेद एवं वैदिक ग्रंथ करते हैं।
ऋग्वैदिक काल में अधिकतर व्यापार वस्तु–विनिमय के द्वारा होता था, परंतु गाय को व्यापार का माध्यम इसी काल में मान लिया गया था। निष्क का अर्थ आरंभ में सोने का हार होता था। [53] लेकिन ऋग्वेद की ही एक ऋचा में वर्णन है कि एक कवि ने पारितोषिक रूप में एक सौ निष्क प्राप्त किये। [54] इससे यही प्रतीत होत है कि निष्क का प्रयोग सिक्के के अर्थ में किया जाता था।
ऋग्वेद की एक ऋचा से स्पष्ट होता है कि इस काल में भी भारत में मोल–तोल करने की परंपरा विद्यमान थीं। [55] ऋग्वेद में व्यापारियों के लिये 'वणिज' शब्द का प्रयोग मिलता है। [56]
ऋग्वेद में समुद्र यात्रा का वर्णन है, [57] लेकिन यह पता नहीं चलता है कि व्यापारी समुद्र मार्ग से कहाँ जाते थे। एक ऋचा में उल्लेख है कि जब भुज्य एक सौ पतवार वाले जहाज से जा रहा था तो आपत की स्थिति में अश्विनों ने उसकी रक्षा की। [58] एक अन्य ऋचा में पूर्वी एवं पश्चिमी समुद्र का उल्लेख हुआ। [59]
उत्तरवैदिक कालीन साहित्यों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उस काल में व्यापारी वस्त्र, पलंगपोश, बकरे की खाल आदि बेचा करते थे। [60] उस समय व्यापारियों को जंगली पशुओं, डाकुओं आदि का भय रहा करता था, इसलिये वे इन्द्र से प्रार्थना करते थे कि वे पशुओं एवं डाकुओं से उनकी रक्षा करें। [61] उस समय व्यापारी अपने वस्तुओं का विक्रय एवं विनिमय दोनों किया करते थे। वैदिक काल में व्यापारियों के एक वर्ग को 'पणि' भी कहा जाता था। [62] 'पणि' लोग व्यापार एवं साहूकारी दोनों तरह के

कार्य करते थे। संभवतः वे लोग अनार्य थे जो वैदिक देवताओं की पूजा नहीं करते थे एवं कंजूस होते थे।[63]

उत्तरवैदिक कालीन साहित्यों में अनेक स्थानों पर सागर के अर्थ में समुद्र का प्रयोग देखने को मिलता है।[64] इस बात की पुष्टि पुरातात्विक साक्ष्यों से भी होती है। ईसा पूर्व नवीं शताब्दी से ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी के बीच भारत का समुद्र के मार्ग से व्यापार होता था। शलमनेकर के काले ओबेलिस्क (सूच्याकार स्तंभ) पर जो आकृतियाँ बनी हैं उन्हें इतिहासकारों ने भारतीय कहा है।[65] इतना ही नहीं इतिहासकारों का यह भी कहना है कि ऊर के चन्द्रमा के मंदिर एवं ईसा पूर्व 604 से 526 के बीच निर्मित नेबुचदनजार के महल में जो सागौन की लकड़ी लगी है वह भी भारत से ही ले जायी गयी थी।[66] इसका सीधा अर्थ यही है कि उत्तर वैदिक काल में समुद्र यात्राओं का जो उल्लेख ग्रंथों में मिलता है वे महज वर्णन ही नहीं बल्कि वास्तविक हैं। उस समय के व्यापारी भारतीय वस्तुओं को बेचने के लिये विदेश भी जाया करते थे।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उद्योग–व्यापार एवं नगरीकरण दोनों एक–दूसरे के पूरक रहे हैं एवं दोनों के बीच अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रहा है। भारतीय इतिहास के उस सुदूर अतीत काल में ही उद्योग एवं नगरीकरण का शिलान्यास हो गया था। जब आदि मानवों ने पहाड़ की कंदराओं से निकलकर जलाशय के तटवर्ती क्षेत्रों में निवास करना प्रारंभ किया। पाषाण काल के इस मध्य चरण में नगरों की स्थापना के लिये नदी तटवर्ती क्षेत्र होने की जिस आवश्यकता का अनुभव उन आदि मानवों ने किया वे पश्चात चलकर नगर स्थापना के आवश्यक शर्त बन गये। नदी न केवल पेय जल उपलब्ध कराते थे बल्कि मछली जैसी भोज्य सामग्री भी उपलब्ध कराते थे एवं आवागमन के जलीय मार्ग भी होते थे। अतः जीवन की दैनदिन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आदि मानवों ने तरह–तरह के उपकरणों एवं औजार बनाने भी शुरू किये। अपने से इतर बस्तियाँ जहाँ इस तरह के हुनर नहीं विकसित हुए थे वहाँ उन्होंने अपने द्वारा उत्पादित सामानों का वितरण भी शुरू कर दिया। इस तरह नगरीकरण के साथ उद्योग एवं व्यापार भी विकसित होने लगा। नगरीकरण की स्पष्ट रूपरेखा सिन्धु सभ्यता काल में बनी जब सिन्धु सहित अनय नदियों के तटों पर योजनाबद्ध ढंगों से नगर बसाये गये एवं इन नगरों को कारीगरों एवं व्यापारियों ने एक पृथक पहचान दी। वैदिक काल में आकर आर्यों ने राजनीतिक भावना के साथ जिस प्रकार प्रसार करना शुरू किया उसके कारण प्राचीन भारत में नगरों की एक सुविस्तृत शृंखला ही खड़ी हो गयी। इन वैदिककालीन नगरों ने राजनीतिक एवं प्रशासनिक पहचान के साथ–साथ अपनी औद्योगिक एवं व्यापारिक पहचान बनायी। इन वैदिक कालीन नगरों यथा आसन्तीवंत, कारौती, भष्णार, काम्पित्य, कौशाम्बी, परिचक्रा, मिथिला, चम्पा, वैशाली आदि का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में मिलता है एवं इनके पुरातात्विक साक्ष्य भी मिलने लगे हैं। ये वैदिक कालीन नगर उद्योग एवं व्यापार की दृष्टि से अत्यंत ही समुन्नत थे। इन्हीं वैदिक कालीन नगरों की नींव पर परवर्ती भारत के नगरीकरण की विशाल इमारत खड़ी हो पायी।

संदर्भ :

1. ऋग्वेद, 1962, 8/78/3
2. वही, 2/33/10
3. वही, 1/66/9 एवं 5/54/11
4. पही, 1/122/2
5. वही, 1/126/2 एवं 5/19/13
6. वाजसनेयि संहिता, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, 1954, 17/2/21
7. ऋग्वेद, 10/72/2
8. वही, 5/9/5
9. वही, 9/1/2
10. वही, 5/30/15
11. अथर्व वेद, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1895, 5/28
12. ऋग्वेद, 5/62/2
13. वही, 1/25/3 एवं 2/94/4
14. वही, 5/54/11 एवं 7/7/15
15. वही, 5/53/12
16. अथर्व वेद, 5/28, 17/1
17. तैत्तिरीय ब्राह्मण, वैदिक शोध संस्थान, पूना, 1962, 2/2/9/7, 3/9/6/5
18. अथर्व वेद– 9/5/4, 11/3/7
19. ए. घोष, द सिटी इन अली हिस्टोरिकल इंडिया, शिमला, 1973, पृ.– 5–11
20. शतपथ ब्राह्मण, आनंद आश्रम मुद्रणालय, पूना, 1946, 13/5/4/2, 9/5/2/15
21. ऐतरेय ब्राह्मण, आनंद आश्रम मुद्रणालय, पूना, 1945, 8/23/2
22. शतपथ ब्राह्मण, 13/5/4/7
23. अथर्व वेद– 11/3/17
24. शतपथ ब्राह्मण, 12/7/1/7
25. वाजसनेयि संहिता, 30/17
26. ऋग्वेद, 5/9/5 एवं 6/3/4
27. वही, 5/9/5
28. वही, 9/112/1
29. वही, 1/161/9, 3/60/2
30. वही, 3/33/9
31. वही, 10/86/5
32. शतपथ ब्राह्मण, 2/3/3/15
33. ऋग्वेद, 2/38/7
34. वही, 6/9/2
35. वही, 10/26/6
36. ऋग्वेद, 10/130/2
37. वाजसनेयि संहिता, 19/83
38. ऋग्वेद, 1/126/6
39. वही, 10/75/8
40. वाजसनेयि संहिता, 19/83
41. अथर्व वेद, 18/4/31
42. वही, 2/45/31
43. वाजसनेयि संहिता, 30/9
44. ऋग्वेद, 1/92/3
45. वही, 8/5/38
46. वही, 6/48/10 एवं 6/106/10
47. वही, 6/75/11
48. वाजसनेयि संहिता, 16/27 एवं 30/7
49. तैत्तिरीय ब्राह्मण, 11/6
50. यजुर्वेद, वैदिक शोध संस्थान पूना, 1939, 13/7/10
51. ओमप्रकाश, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, वाइली ईस्टर्न लिमिटेड, नई दिल्ली, 1986, पृ.– 82
52. ऋग्वेद, 4/24/10
53. वही, 5/19/3
54. वही, 1/126/2
55. वही, 4/24/9
56. वही, 1/112/11
57. वही, 1/25/7
58. वही, 1/116/3
59. वही, 10/136/5
60. अथर्व वेद, 5/7/6
61. वही, 3/16/6
62. ऋग्वेद, 1/33/3

63. ओमप्रकाश, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, वाइली ईस्टर्न लिमिटेड, नई दिल्ली, 1986, पृ.– 101
64. ऐतेरेय ब्राह्मण, 5/16/7
65. ओमप्रकाश, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, वाइली ईस्टर्न लिमिटेड, नई दिल्ली, 1986, पृ.– 101
66. वही, पृ.– 101–102